IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

Impact Factor: 6.252

Volume 2, Issue 1, September 2022

न्यायदर्शन : महर्षि पतंजलि

डॉ. अनामिका चतुर्वेदी

अतिथि विद्वान् (संस्कृत साहित्य),

शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

शोध–सारांश :–

आस्तिक दर्शनों में दुःखत्रय की आत्यन्तिक निवृत्ति के उपायों पर गहनता से विचार किया गया है, दुःखत्रय की आत्यन्तिक निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाला यह अनुपम दर्शन है। शोध–पत्र में योगदर्शन के महत्व को बताने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्दः योगदर्शन, महर्षि, पतंजलि, दुःखत्रय, आत्यन्तिक, उपनिषद् आदि।

प्रस्तावना :

भारतीय आस्तिक दर्शनों में पातंजल–योग दर्शन का अतिमहत्वपूर्ण स्थान हैं। *'युज्' समाधौ '*[1] इस धातु से योग शब्द निष्पन्न होता है। योगशास्त्र की चर्चा हमारे वेद उपनिषद् एवं अन्य आर्ष ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर की गयी है। योग का वास्तविक अर्थ प्रकृति के बन्धन से जीवात्मा का मुक्त होना है। हमारे श्रीमद्भगवद्गीता में योग को परिभाषित करते हुए कहते है

तं विद्याद्दुःखसंयोग वियोगं योगसंज्ञितम्।।[2]

अर्थात् दुःखों के संयोग का वियोग कराने वाला योग होता है, और उस योग का अभ्यास अनुकूल मन से करना चाहिए। प्रकृति के सम्पर्क में आकर जीवात्मा दुःखत्रय से अभिभूत हो जाता है, उन दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति का साधन योग ही है।

विभिन्न शास्त्रों में योगदर्शन का आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ को माना गया है। अपने योग भाष्य में आचार्य वाचस्पति मिश्र लिखते हैं–

'ननु हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नाऽन्यः पुरातनः'[3]

अर्थात् योगशास्त्र का पुरातन प्रवक्ता हिरण्य गर्भ हैं अन्य कोई नहीं, कतिपय विद्वानों ने महर्षि कपिल को ही हिरण्यगर्भ माना है। सांख्यदर्शन एवं योग दर्शन के ऐक्य को स्मृति ग्रंथों में स्वीकार किया गया है यथा –

सांख्ययोगौ पृथम्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।

एकमव्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।[4]

अऽपिच – यत् सांख्यै, प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।[5]

अर्थात् अज्ञ पुरुष ही सांख्य और योग को पृथक् कहते हैं, पण्डितजन नहीं।

वर्तमान में भारतीय दर्शनों में जो योग दर्शन समुपलब्ध है वह महर्षि पतञ्जलि प्रणीत है, इस विषय में कोई संदेहावसर नहीं है। महर्षि पतंजलि के विषय में महर्षियों का मन्तव्य है–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां

मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

योपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां

पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।[6]

अर्थात् जिन्होंने व्याकरण महाभाष्य की रचनाकर वाणी के मल को दूर किया, वैद्यकशास्त्र की रचना कर शरीर के मल का निरसन किया, तथा योगदर्शन की रचना कर अन्तःकरण के मल को अपास्त किया। उन मुनिप्रवर पतञ्जलि को प्रणाम करते है।

महर्षि पतञ्जलि का काल ईसा से पूर्ववर्ती है। महावैयाकरण भर्तृहरि वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड में परोक्षरूप से महर्षि पतञ्जलि की प्रशन्सा करते हुए लिखते है –

कायवाग्बुद्धि विषया ये मला समुपास्थिता।

चिकित्सालक्षणाध्यात्म शास्त्रैस्तेषां विशुद्धयः।।[7]

अर्थात् कायिक, वाचिक एवं मानसिक मलों का निरसन वैद्यकशास्त्र, व्याकरणशास्त्र तथा योगशास्त्र से होता है। यह उक्ति भी इन तीनों शास्त्रों का उपदेष्टा एक ही होने को सूचित करती है, इन तीनों शास्त्रों का क्रमशः नाम है, चरकसंहिता, व्याकरण महाभाष्य एवं योगदर्शन।

महामहोपाध्याय वैयाकरणप्रवरआचार्य नागेशभट्ट उक्त तीनों ग्रन्थों का प्रणेता महर्षि पतञ्जलि को ही स्वीकार करते है।

यद्यपि योगदर्शन की अनेक व्याख्या एवं भाष्य मनीषियों द्वारा लिखे गये है। तथाऽपि उनमें व्यासभाष्य ही सर्वाधिक उपादेय माना गया है।

पूर्व में कहा जा चुका है, युज्–समाधौ धातु से योगशब्द निष्पन्न होता है, चित्तवृत्ति निरोधात्मक योग समाधि का वाचक है, समाधि को सम्प्रज्ञात् समाधि एवं असम्प्रज्ञात् समाधिरूप में द्विविध माना गया है, प्राकृत होने के कारण चित्तवृत्ति भी सात्विक, राजस् एवं तामस् रूप से त्रिविध मानी गयी है।

चित्तवृत्ति के निरोध का उपाय अभ्यास एवं वैराग्य है, भगवद्गीता में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गयी है। यथा –

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते[8]

यह योग आठ अङ्गों वाला होने से अष्टाङ्ग योग कहा जाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के आठ अङ्ग है।

योगदर्शन का कलेवर चार पादों में उपनिबद्ध है। समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद।

इस दर्शन का प्रारम्भ अथ योगानुशासनम् सूत्र से होता है। संस्कृत वाङ्गमय में अथ शब्द को मङ्गलवाचक माना है, किन्तु यहाँ पर अथ शब्द मांगलिक होने के साथ ही अधिकार वाचक भी है। अनुशासन शब्दशास्त्र का पर्याय है। *'अनुशिष्यते अनने इत्यनुशासनम्'* चित्तवृत्ति निरोधात्मक योग, योग की अवस्था में पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। निरोधयोग्य चित्तवृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती है, जो प्रमाणादिक है। यह तन्त्र प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम प्रमाण को मानता है। चित्तवृत्तियाँ उभयतोवाहिनी नदी के सदृश होती हैं जो कल्याणार्थ प्रवाहित होती है इनका निरोध अभ्यास और वैराग्य से ही संभव है।

'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः' [9]

दीर्घकाल पर्यन्त किया गया योगाभ्यास दृढ़भूमि वाला होता है, ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त विषयों की इच्छा से रहित चित्त वैराग्य युक्त होता है। परमात्मा का साक्षात्कार होने पर गुणों के प्रति जो हेयबुद्धि होती है वह परवैराग्य होता है। योगदर्शन प्रकृति एवं पुरुष (जीवात्मा) से पृथक् ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है –

'क्लेशकर्मविपाकाशैरपरामृष्टःपुरुषविशेषः ईश्वरः' [10]

अविद्यादि पञ्चक्लेश होते है, कर्म, धर्म एवं अधर्म रूप से द्विविध माना गया है, कर्मफल की विपाक संज्ञा है। फलभोग से बने संस्कार आश्रय–श्रेणी में आती है। जो क्लेश कर्मादिसे अपरामृष्ट (पृथक्) है वहीं ईश्वर है, इसका तात्पर्य यह हुआ, जो क्लेशादि से अभिभूत रहता हे, वह जीवात्मा कहा जाता है। इस प्रकार जीवात्मा एवं परमात्मा का भेद सिद्ध होता है। ईश्वर सर्वज्ञ है, जैसा कि श्रुति भी कहती है–

'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' / [11]

परमात्मा काल सीमा से वहिर्भूत है और उस परमात्मा का वाचक शब्द प्रणव है, प्रणव का पर्याय ओ३म् है।

प्रथम समाधिपाद में एकाग्रचित्त साधक के लिए योगोपदेश किया गया है। चञ्चलचित्त साधक के कल्याणार्थ द्वितीय साधन–पाद का उपदेश है। तप स्वाध्याय, एवं ईश्वर प्रणिधान को क्रियायोग नाम से अभिहित किया जाता है। यह क्रियायोग समाधि की सिद्धि एवं क्लेशों को न्यून करता है। सुख का अनुवर्तन करने वाला राग एवं दुःखानुवर्ती को द्वेष कहते है। क्लेशवृत्ति ध्यान से क्षीण होती हे।

महर्षि पतञ्जलि का निर्देश है, कि जो दुःख भविष्यकाल में होने वाला है वह हेय होता है–

'हेयंदुःखमनागतम्' [12]

द्रष्टा एवं दृश्य का संयोग ही हेयहेतु है। द्रष्टा पुरुष एवं दृश्य बुद्धि को माना गया है। द्रष्टा चेतन तत्व शुद्ध होने पर भी बुद्धि का साक्षी होता है, बुद्धि का पुरुष के साथ जो संयोग है वह अविद्यामूलक होता है। प्रकृत दर्शन अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह को योग प्राप्ति का साधना माना गया है, साथ ही

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर के प्रति समर्पण को समाधि का साधना माना गया है। जिस पर सुखपूर्वक स्थिर बैठा जा सके, उसे आसन कहा गया है। श्वास एवं प्रश्वास की गति का विच्छेद प्राणायाम होता है इन्द्रियों का चित्तस्वरूप का अनुकरण ही प्रत्याहार कहा गया है। प्रत्याहार से इन्द्रियाँ वशीभूत होती है। इस साधनपाद में योग के बहिरङ्ग साधनों का उपदेश हैं।

तृतीय विभूतिपाद का प्रारम्भ धारणा से होता है, चित्त को किसी एक प्रदेश में धारण करने को ही धारणा कहते हैं। धारणा वाले विषय में चित्त की एकाग्रता ही ध्यान नाम से कही जाती है तथा अपने स्वरूप से भी रहित हो उसे समाधि कहा गया है।

योग सिद्ध होने पर योगी, भूत एवं भविष्य के पदार्थों का भी साक्षात्कार करने में सक्षम होता है, तथा दूसरे के चित्त का भी ज्ञान उसे होता है। योगी का ज्ञान अतीन्द्रिय होता है। योगज सामर्थ्य से हाथी के समान बल को भी योगी प्राप्तकर सकता है। सूर्य में संयम करने से योगी को समस्त भुवनों का ज्ञान भी संभव होता है क्षुधा एवं पिपासा की निवृत्ति भी हो जाती है। योगी अपने प्रातिभज्ञान से सब कुछ जानने में समर्थ है। इसके अतिरिक्त योग साधना से अणिमादि सिद्धियाँ भी योगी को सहज प्राप्त होती है।

चतुर्थपाद में सिद्धियों की प्राप्ति जन्म, औषध, मंत्र, तप एवं समाधि से बताई गयी है। योगियों का कर्म पाप एवं पुण्य से रहित होता है, किन्तु इतर मानवों का कर्म कृष्ण (पाप) एवं शुक्ल (पुण्य) और शुक्लकृष्ण (मिश्रित) होता है। योगी को समस्त आवरण मलों से रहित अनन्तज्ञान प्राप्त होता है तथा समस्त क्लेशों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है।

निष्कर्षत

यह कहा जा सकता है कि यह दर्शन पुरुष को दो भागों में स्वीकार करता है, जिसे जीवात्मा एवं परमात्मा नाम से जाना जाता है। जीवों को असंख्य एवं ईश्वर को एक माना गया है, इस प्रकार चेतन तत्व दो भागों में विभक्त किया गया है, इसके साथ ही पातञ्जल योग दर्शन में अविद्या की सत्ता को भी स्वीकार किया गया है। अविद्या को माया आदि नामों से भी जाना जाता है, जो जड़ एवं त्रिगुणात्मिका है। इस प्रकार यह दर्शन तत्वत्रय को निर्विवाद रूप से स्वीकार करता है।

संदर्भ स्रोत :

[1]. पाणिनि धतुपाठ, पाणिनि पञ्चकम् दिवादिगण, दिल्ली संस्कृत एकादमी, पृ. सं. 144
[2]. श्रीमद्भगवद्गीता 6/23 गीताप्रेस गोरखपुर
[3]. पातञ्जलयोगदर्शन, व्यासभाष्य भूमिका, डॉ.सुरेशचन्द्रश्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती, पृ॰सं॰3
[4]. श्रीमद्भगवद्गीता 5/4 गीताप्रेस गोरखपुर
[5]. श्रीमद्भगवद्गीता 5/4 गीताप्रेस गोरखपुर

[6]. पातञ्जल योगदर्शन, व्यासभाष्यभूमिका, पृ. सं.18

[7]. पातञ्जल योगदर्शन, व्यासभाष्यभूमिका, पृ. सं.16

[8]. श्रीमद्भगवद्गीता 6/35 गीताप्रेस गोरखपुर,

[9]. पातञ्जल योगदर्शन 1/12 व्यासभाष्य डॉ.सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव चौखम्बा सुरभारती,पृ.सं.80

[10]. पातञ्जल योगदर्शन 1/24 व्यासभाष्य डॉ. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव चौखम्बा सुरभारती,पृ.सं.50

[11]. ईशादि नौ उपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् 2/2/7 गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. सं.235

[12]. पातञ्जल योगदर्शन 1/16 व्यासभाष्य डॉ.सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव चौखम्बा सुरभारती, पृ.सं.211